नवउदारवादी एजेंडा और प्राइवेट स्कूल के शिक्षक

ऋषभ कुमार मिश्र

शिक्षकों के बारे में सवाल पूछा जाता है कि एक 'अच्छा' शिक्षक कौन है? अक्सर इस सवाल के उत्तर में हम अपने किसी शिक्षक विशेष का उदाहरण देते हैं। इस शिक्षक विशेष के व्यक्तिगत गुणों की सराहना करते हैं। उसकी छवि को एक करिश्माई रोल मॉडल के रूप में देखते हैं जो हमें पढ़ाने वाला, सलाह देने वाला और हमारे व्यक्तिव को गढ़ने वाला होता है। हम उसकी भूमिका को बौद्धिक विकास के साथ-साथ नैतिक और चारित्रिक विकास तक उभारते हैं। इससे ही मिलती-जुलती भूमिका में नीतिगत दस्तावेज भी एक 'अच्छे' अध्यापक की परिकल्पना करते हैं। वे उसे ऐसा पेशेवर मानते हैं जो सोचने-विचारने वाला हो, जो अपने विद्यार्थियों की सोचने और विचारने की क्षमता को भी जगाए (एन.सी.एफ.टी.ई., 2009, एन.सी.एफ. 2005)। इन दोनों परिभाषाओं के उलट प्रबंधन, चाहे वह निजी हो या सरकारी, उसे अच्छा अध्यापक मानता है जो दिए गए संसाधनों और दबावों में विद्यार्थियों की उपलब्धि के लिए समर्पित हो (बत्रा, 2005)। प्रबंधन की विचारधारा और व्यवस्था को बनाए रखने में सहयोग करे (कुमार, 2011)। शिक्षक की इन विरोधाभासी छवियों को आप अपने आस-पास खोज सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप शिक्षकों से बातचीत करें तो उनकी स्मृति की पोटली में आप अनगिनत यादें पाएंगें जिसमें न जाने कितने विद्यार्थियों के नाम, उनसे जुड़े किस्से, अनगिनत प्रयोग और अनुभव, सीखने और जानने के नुस्खे होगें। आप यह भी पाएंगें ये स्मृतियां किसी सिद्धान्त की उपज नहीं है बल्कि शिक्षण के दौरान पैदा हुई सूझ-बूझ होती है। स्मृतियों की इस पूंजी की तुलना न तो शिक्षा के सैद्धान्तिक ज्ञान से की जा सकती है और न ही व्यावसायिक संतुष्टि के किसी मनावैज्ञानिक सिद्धान्त से। यह तो शिक्षक और विद्यार्थियों की साझा संपत्ति होती है जो स्थायी स्मृति बन शिक्षकों को उपलब्धि का एहसास कराती है। इस उपलब्धि की एक सीमा यह है कि इसमें केवल अध्यापक और विद्यार्थी शामिल हैं। जैसे ही इस दायरे से बाहर निकलकर बड़े सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक फलक पर अध्यापकों की स्थिति को देखते हैं तो अब तक जिस सुंदर चित्र को खींचा गया है उसमें दरारें पड़ने लगती हैं। इन दरारों का अवलोकन उन सरकारी रिपोर्टों या किसी निजी संस्थान के अध्ययन में खोज सकते हैं जहां शिक्षकों की उदासीनता, उत्तरदायित्वहीनता और उपेक्षित होने जैसे पक्षों का उल्लेख होता है। ऐसी स्थितियों के लिए अक्सर दोषारोपण शिक्षकों पर किया जाता है और इसे उनके व्यक्तिगत गुणों का हिस्सा बता दिया जाता है। जबकि सच्चाई यह है कि हमारी संस्थागत संस्कृति शिक्षकों की सक्रियता और उत्साह का पोषण नहीं कर पा रही है। वह उन्हें कुछ नया करने के लिए आकर्षित नहीं कर पा रही है। स्कूलों की कार्य-संस्कृति शिक्षण कर्म को 'रुटीन प्रैक्टिस' बना दे रही है।

इसी पृष्ठभूमि में यह लेख वर्धा (महाराष्ट्र) जिले के अलग-अलग प्राइवेट स्कूलों में काम कर रहे शिक्षकों से हुई बातचीत, उनके अनुभवों और चिंताओं को आधार बनाकर शिक्षण कर्म के यथार्थ के एक भिन्न फलक को प्रकट करने की कोशिश करता है। ये शिक्षक उस बड़े पेशेवर समूह के प्रतिनिधि हैं जो निजी क्षेत्र के

श्रम बाजार में अपने वेतन-भत्ते की चुनौतियों से लेकर व्यक्तिगत जीवन में अपनी पहचान को लेकर उहापोह की स्थिति में है। कुल स्कूली शिक्षकों के समुच्चय में इनका एक बड़ा हिस्सा है। सरकारी क्षेत्रों में नौकरियों की कमी और कटौती के कारण अध्यापक शिक्षा की डिग्री वाले युवक और युवतियों की बड़ी संख्या हर वर्ष इस समूह में जुड़ रही है। यहां यह बताना जरूरी के है कि इन शिक्षकों ने किसी प्रश्नावली या साक्षात्कार के दौरान ये बातें साझा नहीं की। समय-समय पर अनौपचारिक मुलाकातों में उनके जो विचार प्रकट हुए, उन्हें लेख का आधार बनाया गया। इन शिक्षकों ने बिना उद्दीपक यानि कि प्रोवोक किए बिना ही अपनी व्यथा-कथा सुनाई।

प्राइवेट स्कूल : शिक्षा का नवउदारवादी अवतार

प्राइवेट स्कूलों की मौजूदगी और स्वीकार्यता आज के समय की सच्चाई है। महानगरों से लेकर छोटे शहरों, कस्बों और गांवों तक ऐसे स्कूल खुल चुके हैं। एक तरफ जहां महानगरों में कुछ ऐसे स्कूल मिल जाएगें जो आलीशान इमारतों और पांच सितारा होटलों जैसी सुविधाओं से युक्त हैं तो दूसरी तरफ ज्यादातर स्कूल ऐसे हैं जो कम फीस वाले हैं। ये दूसरी तरह के स्कूल संसाधनों की दृष्टि से भी संपन्न नहीं है। फिर भी इनके प्रति अभिभावकों के आकर्षण में कोई कमी नहीं है। आजकल सरकारी स्कूल में अपने बच्चे को वही अभिभावक भेजता है जो निजी स्कूल की थोड़ी-सी भी फीस वहन नहीं कर पाता है। ऐसे हालात तब हैं जबकि अनिवार्य और मुफ्त स्कूली शिक्षा हर बच्चे का मौलिक अधिकार है। इस अधिकार को सुनिश्चित करना राज्य का दायित्व है। बावजूद इसके सरकारी शालाओं की प्रभावशीलता और गुणवत्ता के प्रति आम आदमी आशान्वित नहीं है। इसका कारण है कि सरकारी स्कूलों की शिक्षा, उसकी अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतर रही है। हर अभिभावक इसी मकसद के साथ अपने बच्चे को स्कूल भेजता है कि बच्चा एक सफल आर्थिक प्राणी बनेगा जिसकी आर्थिक प्रगति, उसकी और परिवार की सामाजिक गतिशीलता का माध्यम बनेगी (बाल, 2003)। आर्थिक प्राणी की इस छवि में प्रभावशीलता और योग्यता का पैमाना रोजगार के बाजार में सफलता है। बाजार के सिद्धान्तों के अनुरूप प्राइवेट स्कूल आम आदमी की इस आस को बनाए रखते हैं। इसी कारण वे फल-फूल रहे हैं। बाजार की ही शब्दावली के सहारे कहूं तो इनकी मांग बनी हुई है। इस तरह से ये स्कूल पूंजी के निर्माण और लाभ कमाने के संस्थान बन गए हैं (हिल, 2007)। इनके लाभ से उपभोक्ताओं को कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि ये उपभोक्ताओं को अपेक्षित मूल्य प्रदान करने के वायदे पर कायम हैं। तात्पर्य है कि ये विद्यालय यदि आपके पाल्य को ऐसा कुछ सिखाते हैं जिससे वह अपने हम उम्र प्रतियोगियों से आगे निकल जाए तो इसके लिए आप अधिक कीमत चुकाने में गुरेज नहीं करेंगे। अब समस्या है कि सब बराबर कीमत नहीं चुका सकते हैं। इसलिए स्कूल के द्वारा पैदा होने वाले लाभ के अवसर असमान हैं। यह असमानता पूंजीपति और प्रभावशाली लोगों को संतोष देती है कि उनके बच्चों का स्कूल अन्य के बच्चों के स्कूल से भिन्न और विशेष है। दूसरी ओर भारत का वृहद् मध्यम वर्ग अपनी जरूरतों में कटौती कर निजी स्कूलों जनित लाभ पाने के लिए जूझ रहा है। निजीकरण के समर्थक कहेगें कि यह व्यवस्था चुनाव का विकल्प देती है जबकि सच्चाई है कि इसमें हर विकल्प की श्रेणी और कीमत है जो थोड़े से चुने हुए लोगों के पक्ष में है। ऐसे ही निजीकरण के पक्ष में फैलाया जाने वाला दूसरा मुहावरा 'प्रतियोगिता' है। ऐसा माना जाता है कि जब खुली बाजार व्यवस्था में स्कूलों के बीच प्रतियोगिता होगी तो वे अपनी गुणवत्ता को सुनिश्चित करेंगे। यह प्रतियोगिता ब्रैण्डिंग को जन्म दे रही है। अधिकांश प्राइवेट स्कूल बच्चों और अभिभावकों को सुविधाओं का आकर्षण दे रहे हैं। इस आकर्षण में अधिक से अधिक उपयोगी ज्ञान और कौशलों को सिखाने का विज्ञापन है। वस्तुतः इस तरह के प्रयासों से स्कूल विद्यार्थियों को कम समय में अधिक सीखाने के बहाने उन पर बोझ बढ़ाता है। सीखने की स्वाभाविकता को नष्ट करता है। इसी तरह अपनी विशिष्टता के नाम पर स्कूल में बहुत-सी बेचे जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं को बेचने लगे हैं जो अभिजनत्व का बोध कराती है। उदाहरण के लिए हॉर्स राइडिंग, स्वीमिंग पूल और फॉरेन ट्रिप के अवसरों की उपलब्धता या कम फीस वाले स्कूलों में कम्प्यूटर की निःशुल्क शिक्षा, कक्षा शिक्षण के साथ मुफ्त ट्यूशन जैसी सुविधाओं को देख सकते हैं। प्रतियोगिता में आगे बने रहने का भाव शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों को पीछे ढकेल देता है। कारण? स्कूलों की सफलता का पैमाना प्रतिष्ठित

संस्थानों में प्रवेश या प्रवेश परीक्षा को उत्तीर्ण करने का प्रतिशत है। हर स्कूल इस प्रतिशत को अधिक से अधिक ऊंचा करना चाहता है। इसके लिए केवल पुस्तकीय ज्ञान की दक्षता की आवश्यकता होती है। अतः पूरी व्यवस्था इसके इर्द-गिर्द सिमट के रह जाती है। इन निजी स्कूलों में संस्था के लाभ के लिए हर कर्मचारी को अपनी भूमिका सिद्ध करनी है। इस तरह की नवउदारवादी व्यवस्था ऐसे वैयक्तिक पेशेवरों की पैरवी करती है जो अपने प्रदर्शन से संस्था के लिए अपनी उपयोगिता को बनाए रखें (रीड, 2003)। प्रबंधन इन्हें लगातार प्रदर्शन की कमजोरियों से परिचित कराता है ताकि वे अपने को सर्वोत्तम और विशिष्ट बताने की लालसा में काम करते रहे। ऐसा करते हुए वह कर्मचारियों के बीच भी प्रतियोगिता पैदा करता है। इसमें प्रबंधन का लाभ है कि अलग-अलग व्यक्ति संस्था के लाभ के लिए अधिकतम कार्य करते हैं और वे एकजुट होकर कभी अपनी आवाज नहीं उठा सकते।

प्राइवेट स्कूलों का श्रम बाजार

जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है कि नवउदारवादी एजेंडें में शिक्षक की नियुक्ति और सेवाशर्ते मुक्त श्रम बाजार की शर्तों के अनुसार होती है। कई बार राज्य निगरानी के कुछ उपाय करता है लेकिन ये बहुत कारगर सिद्ध नहीं होते हैं। इस श्रम बाजार में शिक्षक की कमजोर स्थिति का अनुमान इसी बात से लगा सकते हैं कि एक शिक्षिका पिछले तीन वर्षों से अलग-अलग प्राइवेट स्कूलों में नौकरियां बदल रही है। उन्होंने 5000 रुपये के वेतन से नौकरी शुरू की थी। वर्तमान में उनका वेतन 10000 रुपये है। इतना कम वेतन तो भारत सरकार के किसी चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी का भी नहीं होता। स्थिति यह है कि इनके जिले का कोई भी प्राइवेट स्कूल साल के 12 महीने वेतन नहीं देता। गर्मी की छुट्टियों का वेतन नहीं मिलता। साथ ही यह डर भी रहता है कि अगले वर्ष कोई सस्ता शिक्षक मिल गया तो इनकी नौकरी भी जा सकती है। शिक्षकों को वेतन कम देना हो इसके लिए स्कूल शिक्षकों की न्यूनतम अर्हता से भी समझौता कर लेते हैं। लगभग हर प्राइवेट स्कूल में आपको ऐसे शिक्षक अवश्य मिलेंगे जिनके पास अध्यापक शिक्षा की कोई उपाधि ही नहीं है। अध्यापक पात्रता परीक्षा पास करना तो दूर की बात है। इन स्कूलों में महिला शिक्षिकाओं की संख्या अधिक होती है। अक्सर स्त्रियों के स्वभाव और मां की सी भूमिका के सापेक्ष इसकी व्याख्या की जाती है। जबकि सच्चाई यह है कि महिला होने के कारण उनकी सेवाशर्तों और सौदेबाजी करने की ताकत अपेक्षाकृत कम होती है। अतः वे कम वेतन पर काम करने को तैयार हो जाती हैं। यह भी पाया गया कि स्कूल ने विषयों की प्रकृति के आधार पर अध्यापकों का श्रेणीकरण कर दिया है। उनके लिए गणित और विज्ञान के अध्यापक महत्वपूर्ण हैं। उन्हें अपेक्षाकृत अधिक वेतन दिया जाता है। जबकि हिंदी, मराठी और सामाजिक अध्ययन के विषयों में वेतन के लिए अधिक जूझना पड़ता है। एक स्कूल में तो यहां तक देखा कि स्थानीय कोचिंग के अध्यापक को स्कूल केवल इसलिए वेतन देता है कि उसके नाम पर बच्चे आएं। अंशकालिक अध्यापकों की नियुक्ति एक और तरीका है जिसके द्वारा स्कूल अध्यापकों का शोषण करते हैं। खेल, नृत्य और कला जैसे विषयों के अध्यापक जरूरत पड़ने पर बुलाये जाते हैं। जब ये आते हैं उस दिन का वेतन इन्हें दिया जाता है। एक अन्य प्राइवेट स्कूल के शिक्षकों ने बताया कि उनके यहां शिक्षकों को सख़्त हिदायत है कि उन्हें कितना वेतन मिलता है इसकी जानकारी वे न तो किसी बाहरी को देगें न ही उसी विद्यालय के किसी अन्य साथी शिक्षक को। सवाल उठाता है कि इन स्थितियों के बाद भी ऐसे विद्यालयों को शिक्षक कैसे मिल जाते हैं। क्यों न मिलें? सरकारी नौकरियां लगातार घट रही हैं। सरकारी शालाओं में भी बड़ी संख्या में पद खाली हैं। राज्य सरकारों द्वारा शिक्षक भर्ती परीक्षाओं का आयोजन नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त विवेचित स्थिति स्वाभाविक है।

कार्यसंस्कृति : निगरानी और जवाबदेही की जकड़बंदी

लोकतंत्र, नागरिकता और समानता का व्यवहार जैसे शब्दों का चलन स्कूल के लक्ष्यों और कार्यप्रणाली को परिभाषित करने के लिए खूब किया जाता है। इन स्कूलों के शिक्षकों ने जो अनुभव साझा किए उसके आधार पर समझ में आता है कि प्राइवेट स्कूलों में प्रबंधन सर्वोपरि होता है। आवश्यक नहीं है कि प्रबंधन को शिक्षा के लक्ष्य, उसकी प्रक्रिया,

माध्यम और शिक्षणशास्त्र के सरोकारों का ज्ञान हो। अक्सर प्रबंधन धनाढ्य व्यक्ति करते हैं जो अपनी पूंजी से विद्यालय का आरंभ और संचालन करते हैं। ऐसे प्रबंधक स्कूल के संचालन के लिए किसी 'अनुभवी' अध्यापक को कुशल प्रशासक मानते हुए प्रिंसिपल बना देते हैं। प्रबंधक की व्यक्तिगत सोच का प्रभाव पूरे संगठन पर दिखता है। शिक्षकों के उत्तरदायित्व तय किये जाते हैं। शिक्षक प्रिसिंपल और प्रबंधक की निगरानी में और उनकी सलाह से कार्य करते हैं। कई विद्यालयों में शिक्षकों के लिए पूरी 'आचार संहिता' इसी प्रकार निर्मित होती है। ऐसे निजी स्कूलों में शिक्षकों से पूछा नहीं जाता बल्कि उन्हें बताया जाता है कि क्या करना है और कैसे करना है। उदाहरण के लिए एक अध्यापक ने बताया कि उनके यहां जब नया सत्र शुरू होता है तो पास के महानगर के प्रतिष्ठित स्कूलों के अध्यापकों को बुलाकर 'बेस्ट प्रैक्टिस' के नाम पर उन विद्यालयों में करायी जाने वाली गतिविधियों को अपने विद्यालय में करने के लिए तैयार किया जाता है। इस कार्यशाला में आमंत्रित विशेषज्ञ 'पूरी तैयारी' के साथ आते हैं। वे इन शिक्षकों को कब करना है? क्या करना है? कैसे करना है? का पूरा खाका देकर जाते हैं। इस शिक्षक ने यह चिंता जाहिर की कि दूसरे की नकल उतारने की जरूरत क्यों हैं? उसमें उद्विग्नता थी वह अपने विद्यार्थियों के लिए कुछ हट के कर सकता है लेकिन इसके अवसर नहीं हैं। एक शिक्षिका ने अपना अनुभव साझा करते हुए कहा कि विद्यालय के स्थापना दिवस के आयोजन में उसे और उसके साथियों को अतिथियों के स्वागत के लिए गाना गाना था। पहले तो उन लोगों ने इस जिम्मेदारी को मान लिया। बाद में बताया गया कि अतिथियों के मंच पर आने और वहां से उतरने के पूर्व तक उन्हें उसी स्थान पर खड़े रहना है। इस शिक्षिका का सवाल था कि जब बच्चे अपने शिक्षक को इस भूमिका में देखेगें तो क्या वे उसकी बात मानेंगे? निश्चित रूप से यह व्यवहार शिक्षक की गरिमा के विरुद्ध है। इसी तरह एक शिक्षिका ने बताया कि प्रबंधक उसकी कक्षा में सीधे आ जाते हैं और बच्चों के सामने ही बताने लगते हैं कि उसे इन बच्चों को कैसे पढ़ाना चाहिए।

अलग-अलग प्राइवेट स्कूल के शिक्षकों ने अपने यहां की कार्यसंस्कृति के बारे में जो जानकारी साझा की वह भी स्वायत्तहीन, कठोर निगरानी और नियंत्रण वाली व्यवस्था को दर्शाती है। एक शिक्षक ने बताया कि उन्हें स्कूल पहुंचते ही अपना मोबाइल फोन बंद करना पड़ता है। स्कूल की छुट्टी होने पर ही फोन ऑन करना होता है। एक शिक्षिका के अनुसार उसके विद्यालय में सख़्त निर्देश हैं कि कोई शिक्षक बैठ कर नहीं पढ़ा सकता है। हर कक्षा में सीसीटीवी है इसलिए उन्हें इस आदेश का पालन करना होता है। इन शिक्षकों के संदर्भ में पाया गया कि स्कूल की अवधि के बाद भी वे स्कूल के कामों को कर रहे होते हैं। अक्सर उन्हें घर लौटते समय नोटबुक का बंडल लाना होता है। विद्यालय में अधिकांश समय कक्षाओं में गुजारना पड़ता है इसलिए यह कार्य वहां नहीं हो पाता। एक शिक्षिका बताती हैं कि उनके यहां कक्षा अध्यापिका का फोन नंबर सभी अभिभावकों को दिया गया है। स्कूल के बाद हर-रोज औसतन 4-5 फोन आते हैं। कई बार कुछ जरूरी चिंताएं होती है लेकिन हर छोटी चिंता पर फोन करने की आदत के कारण उन्हें लगता है कि वे 24 घंटे ड्यूटी पर हैं। निजी स्कूल एक अच्छी सेवा देने वाली फर्म की तरह सलाह-मार्गदर्शन आदि ग्राहकों के हितों का ख़्याल रखने वाली योजनाएं चलाते हैं। इन सब का दबाव शिक्षकों पर पड़ता है। इस दबाव के बदले उन्हें कोई भी पूरक लाभ नहीं मिलता। शिक्षकों के इन अनुभवों से लगता है कि वे केवल शिक्षण की सुविधा प्रदान करने वाले 'कस्टमर केयर अधिकारी' बन चुके हैं। वे प्रभावी संप्रेषण के तरीके जानते हैं। वे विषय का ज्ञान रखते हैं। वे सूचना प्रौद्योगिकी का बखूबी इस्तेमाल करते हैं। इस सबके साथ एक कुशल कर्मचारी की तरह वे क्या-क्या करना है के निर्देशों का पालन करते हैं। दुःखद तो यह है कि कक्षा के बाद की अवधि में क्या-क्या करना है? इसका पूरा ढांचा है। जैसे-लंच ड्यूटी, ऑफ्टर स्कूल ड्यूटी, डेटा कीपिंग, नोट बुक चेकिंग आदि। लेकिन कक्षा में पढ़ाने की तैयारी के लिए न तो समय दिया जाता है और न ही संसाधन। उल्लेखनीय है कि इन शिक्षकों के वृत्तिक विकास के लिए न तो कोई कार्यशाला आयोजित की जाती है और न ही ऐसी किसी कार्यशाला के लिए इन्हें बाहर भेजा जाता है। अपने विषय से संबंधित पुस्तकों को इन्हें खुद खरीद कर पढ़ना पड़ता है। इसी तरह स्कूल बच्चों के लिए पत्र-पत्रिकाएं तो मंगाते है लेकिन शिक्षकों के लिए उपयोगी पत्रिकाओं को नहीं मंगाया जाता। कृष्ण कुमार

(2011) नव उदारवाद और शिक्षा के संबंध की चर्चा करते हुए गुस्सा, भ्रम और अविश्वास तीन विशेषणों का प्रयोग करते हैं। इन शिक्षकों के अनुभवों में आप इन तीनों तत्वों को खोज सकते हैं। जिन शिक्षकों का कार्यस्थल उनके अनुभवों और विचारों की उपेक्षा करता है वहां एक अनकही असंतुष्टि ही होगी। नया प्रयोग करने की आजादी न होने पर न केवल शिक्षक बल्कि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया व्यक्ति और बाजार केन्द्रित हो जाएगी।

क्या ये शिक्षक वास्तव में पेशेवर हैं?

कार (2000) पेशेवर शिक्षक की विशेषताओं के बारे में बताते हैं कि-

- कोई भी पेशेवर एक लोक-सेवा प्रदान करता है।
- उसके पास एक व्यवस्थित सैद्धान्तिक ज्ञान और अभ्यास जन्य अनुभव होता है।
- अभ्यास की एक नैतिक संहिता होती है जो व्यवसाय विशेष के लिए विशिष्ट होती है।
- नियुक्ति, सेवाशर्तों और अनुशासन के लिए नियम और संगठन होता है।
- इन्हें एक वैयक्तिक स्वायत्तता, निर्णय लेने और उसे क्रियान्वित करने का अधिकार होता है।

क्या प्राइवेट स्कूल के शिक्षकों के संदर्भ में ये विशेषताएं विद्यमान है? लेख से स्पष्ट है कि इन कसौटियों के बदले प्राइवेट स्कूल के शिक्षक प्रतिस्पर्धा, जवाबदेही और ऑडिट में उलझे हुए हैं। ये शिक्षक अपने कार्यों के प्रमाण का दस्तावेज बनाने में व्यस्त हैं ताकि वे अपने को उपयोगी सिद्ध कर सकें। इस नवउदारवादी व्यवस्था में सर्वाधिक अविश्वास भी उन्हीं पर किया जा रहा है। वे उच्च दक्षता, निम्न लागत और शून्य मेंटेनेंस की शर्त को पूरा कर रहे हैं। उन्हें अपने विचार रखने या प्रबंधन के सामने दर्ज कराने का न्यूनतम स्थान है। उनसे अपेक्षा है कि वे प्रबंधन के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक एजेंडे से सहमत हों। वस्तुतः शिक्षकों का वृत्तिक (प्रोफेशनल) संदर्भ सत्ता संबंधों पर आधारित हो चुका है। इसमें एक अच्छा अध्यापक वह है जो दिए गए संसाधनों और दबावों में विद्यार्थियों की उपलब्धि के लिए समर्पित हो। जो मशीन की तरह कार्य तो करे लेकिन विचारवान मनुष्य की तरह कोई सवाल न पूछे। विद्यालय प्रबंधन ने शिक्षक को आज्ञाकारी कर्मचारी बना दिया है। जैसे-जैसे शिक्षण व्यवसाय पर बाजार का दबाव और प्रभाव बढ़ेगा वे शिक्षक कम टेक्नीशियन और मैनेजर अधिक लगेंगे। औपनिवेशिक काल में सत्ता-अधीनस्थ होने के कारण कर्मचारी बना शिक्षक आज बाजार के प्रभाव में ऐसा शिक्षक बनता जा रहा है जो 'गुरू' होने के भ्रम में बिना निवेश या टूट-फूट और क्षरण के निजी क्षेत्र के विस्तार और लाभार्जन का माध्यम बन चुका है। इस व्यवस्था ने उसकी सामाजिक-राजनीतिक चेतना और सक्रियता को पंगु कर दिया है। एक केन्द्रीकृत और लाभोन्मुखी व्यवस्था में नियंत्रण, एकरूपता, निगरानी और जवाबदेही के लिए प्रमाण प्रस्तुत करने की मजबूरी ही अध्यापकों की उदासीनता का मूल है। हर व्यवसाय के नैतिक सरोकार होते हैं। शिक्षा और शिक्षक कोई बाजार की सामग्री नहीं है जो सेल्समैन की तरह दिए टारगेट को पूरा करने को मजबूर हों।

काश कि इन स्कूलों के प्रबंधक समझ पाते शिक्षण ग्राहकों को संतुष्ट करने वाला व्यवसाय नहीं है। यह ऐसी प्रक्रिया है जहां जीवंत चेतनाएं संवाद करती है। नया रचती हैं, करती हैं, अपनाती हैं, विरोध करती हैं। जहां केवल विषय नहीं पढ़ाया जाता है पहचानें निर्मित होती हैं समाज, उसका इतिहास, समस्याएं और विमर्श सब मौजूद होते हैं। इस जीवंत व्यवस्था में शिक्षक विश्वास चाहते हैं। अपनी सोच को कार्यरूप देने की सुविधा और सहयोग चाहते हैं। सम्मानजनक जीविका चाहते हैं। शिक्षण यांत्रिक कार्य मात्र नहीं हैं। इसमें भावनात्मक भागीदारी होती है। शिक्षक-विद्यार्थी और शिक्षक-शिक्षक और शिक्षक-विद्यालय के बीच सौहार्द्रपूर्ण सकारात्मक संबंध विद्यालय में एक स्वस्थ वातावरण बनाता है। तब जाकर शिक्षक विद्यालय को अपनाते हैं। यह अपनत्व का भाव उनके प्रदर्शन के स्तर को ऊंचा उठाता है। शिक्षण केवल व्यक्तिगत उपलब्धि या क्षमता से नहीं क्रियान्वित होता है। शिक्षकों का समूह एक-दूसरे के साथ मिलकर सीखने की संस्कृति तैयार करते हैं। एक-दूसरे को अभिप्रेरित करते हैं। किसी एक की जवाबदेही तय कर उस पर दबाव डाला जा सकता है लेकिन व्यवस्था को प्रभावशाली बनाया जा सके इसकी संभावना

थोड़ी कम है। शिक्षण व्यवसाय में प्रोफेशलन होने के नाम पर पारस्परिक रिश्तों की जितनी उपेक्षा करेंगे कार्य संस्कृति उतनी ही गड़बड़ होगी। शिक्षक को क्या करना है? कैसे करना है? कब करना है का निर्णय यदि प्रबंधन या कोई अन्य अधिकारी करेगा तो शिक्षक की सृजनात्मकता उसके अभ्यासमूलक ज्ञान, उसकी सोचने-विचारने की शक्ति को आप खारिज करेगें। शिक्षक केवल आर्थिक प्राणी नहीं है जो संगठन के लिए उत्पादक श्रमिक मात्र हो बल्कि वह मननशील अभ्यासकर्ता है जो अपने विद्यार्थियों और खुद के सर्वांगीण विकास के लिए सचेत रहता है। ◆

लेखक परिचय : सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा।

संपर्क : 7057392903; rishabhrkm@gmail.com

संदर्भ

Ball, S. (2003). The teacher's soul and the terror of performativity. Journal of Education Policy, 18 (2), 215-228.

Batra, P. (2005). Voice and Agency of Teachers: Missing Link in National Curriculum Framework 2005. Economic and Political Weekly, 40 (40), pp. 4347-4356.

Carr, D. (2000). Professionalism and Ethics in Teaching. London: Routledge

Hill, D. (2007). Critical Teacher Education, New Labour and the Global Project of Neoliberal Capital. Policy Futures in Education, 5(2), pp. 204-225.

Kumar, K. (2011). Teaching and the Neo-Liberal State. Economic and Political Weekly, 46 (21), pp. 37-40.

N.C.E.R.T. (2005). National Curriculum Framework. New Delhi: NCERT

N.C.T.E. (2009). National Curriculum Framework for Teacher Education. New Delhi: NCTE

Reid, A. (2003). Understanding teachers' work: is there still a place for labour process theory? British Journal of Sociology of Education, 24(5), pp. 559-573